LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 1: अर्जुन विषाद योग

3/4 (श्लोक 25-36), रविवार, 11 जनवरी 2026

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/_zdSGshJjGo

महावीर योद्धा की अवसादग्रस्तता।

हनुमान चालीसा और गीता परिवार के भजन, गीत व मङ्गलाचरण के बाद दीप प्रज्वलन किया गया। हमारे गुरु, परमपूज्य श्री गोविन्द देव गिरि जी महाराज के चरण वन्दन करते हुए और सभी उपस्थित गीता साधकों का मनःपूर्वक अभिवादन करते हुए आज के विवेचन सत्र का आरम्भ हुआ।

हम श्रीमद्भगवद्गीता जी के प्रथम अध्याय, जिसका नाम **अर्जुनविषादयोग** है, का अध्ययन कर रहे हैं। जैसा कि पूर्व में भी कहा गया है, इस अध्याय में कहीं भी श्रीभगवान् का उपदेश नहीं है। श्रीभगवान् का उपदेश तो द्वितीय अध्याय से प्रारम्भ होता है। इस सम्पूर्ण अध्याय में एक बार भी **"श्रीभगवान् उवाच"** ऐसा कथन नहीं आता, फिर भी **यह अध्याय श्रीमद्भगवद्गीता जी का एक अविभाज्य अङ्ग है**। ऐसा क्यों?

क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीता जी जिस परिस्थिति में कही गई, उस सम्पूर्ण परिस्थिति का वर्णन इसी अध्याय में किया गया हैं।

- **अर्जुन की मनःस्थिति कैसी थी, वह मनःस्थिति किस प्रकार परिवर्तित होती गई और अर्जुन के अन्तःकरण में कैसा परिवर्तन घटित हुआ, इन सभी बातों को स्पष्ट करने वाला यह अध्याय है।**

यह सब जानना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि जब अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता जी का उपदेश दिया गया, तब उसकी मनःस्थिति कैसी थी? यदि उसी प्रकार की मनःस्थिति बनाकर हम श्रीमद्भगवद्गीता जी का अध्ययन करेंगे, तो उसे समझना हमारे लिए अधिक सुगम हो जाएगा। **पहले अर्जुन को समझना होगा, तभी गीता का मर्म समझ में आएगा**।

अब हमने यह देखा कि धृतराष्ट्र को सञ्जय युद्धभूमि का वर्णन कर रहे है। जब धृतराष्ट्र ने प्रश्न किया, तब सञ्जय ने युद्धभूमि में घटित घटनाओं का वर्णन करना प्रारम्भ किया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार दोनों सेनाएँ आमने-सामने खड़ी हैं, किस प्रकार दुर्योधन ने आचार्य द्रोण से संवाद किया तथा पाण्डवों की सेना के श्रेष्ठ योद्धा कौन हैं? और कौरवों की सेना के प्रमुख योद्धा कौन हैं? इन सभी बातों से धृतराष्ट्र को अवगत कराया।

इसके पश्चात्, जब युद्ध प्रारम्भ होने की स्थिति उत्पन्न हुई, तब पितामह भीष्म ने शङ्खनाद किया। उनके शङ्खनाद होते ही

सेना के समस्त रणवाद्य एक साथ बज उठे। सभी योद्धाओं ने अपने-अपने शङ्ख फूँके।

स्वयं **श्रीभगवान् श्रीकृष्ण** ने भी **'पाञ्चजन्य' नामक शङ्ख** का नाद किया और **अर्जुन** ने **'देवदत्त' नामक शङ्ख** को बजाया।

जैसे ही समस्त रणवाद्य बजने लगे, सम्पूर्ण आकाश और पृथ्वी उस नाद से गूँज उठे। वह नाद इतना भयङ्कर था कि सञ्जय के अनुसार धृतराष्ट्र के पुत्रों के हृदय विदीर्ण हो गए और उनके अन्तःकरण में भय उत्पन्न हो गया।

इस अवस्था में अब युद्ध का टलना सम्भव नहीं था। शङ्खनाद हो चुका था। अब बाण चलाने का, धनुष उठाने का और तलवार सँभालने का समय आ गया था। अपने-अपने शस्त्र उठाकर युद्ध करने की घड़ी आ चुकी थी। अब यह युद्ध अवश्यम्भावी हो गया था।

ऐसी स्थिति में अर्जुन भी युद्ध के लिए प्रस्तुत थे। उन्होंने अपना धनुष उठाया और श्रीभगवान् से कहा-

- **"मेरे रथ को दोनों सेनाओं के मध्य ले जाकर स्थापित कीजिए, ताकि मैं यह देख सकूँ कि कौन-कौन मेरे साथ युद्ध करने के योग्य है। तब तक रथ को वहीं स्थिर रखिए, जब तक मैं यह भली-भाँति न देख लूँ।"**

अर्जुन एक श्रेष्ठ योद्धा थे और इसलिए वह किसी के भी साथ बिना विचार किए युद्ध नहीं करना चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने रथ को दोनों सेनाओं के मध्य स्थापित करने की प्रार्थना की।

1.25

भीष्मद्रोणप्रमुखतः(स्), सर्वेषां(ञ्) च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्, समवेतान्कुरूनिति।।1.25।।

पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण के सामने तथा सम्पूर्ण राजाओं के सामने इस तरह कहा कि 'हे पार्थ! इन इकट्ठे हुए कुरुवंशियों को देख'।

विवेचन- अर्जुन के यह कहने पर कि "मेरा रथ दोनों सेनाओं के मध्य ले चलिए" तब श्रीभगवान् (श्रीकृष्ण) ने उस रथ को वहाँ ले जाकर स्थापित किया, जहाँ पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, समस्त प्रमुख राजा तथा अन्य महान् योद्धा उपस्थित थे।

इसके पश्चात् सञ्जय धृतराष्ट्र से कहते हैं कि श्रीभगवान् ने अर्जुन से कहा, "तुम यह देखना चाहते हो कि तुम्हें किन-किन के साथ युद्ध करना है? तो हे अर्जुन! यहाँ युद्ध के लिए एकत्रित हुए इन समस्त कौरवों को भली-भाँति देखो।

1.26

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः(फ्), पितॄनथ पितामहान्।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्, पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा।।1.26।।

उसके पश्चात् पृथानन्दन अर्जुन ने उन दोनों ही सेनाओं में स्थित पिताओं को, पितामहों को, आचार्यों को, मामाओं को, भाइयों को, पुत्रों को, पौत्रों को तथा मित्रों को भी देखा

विवेचन- अर्जुन ने युद्धभूमि में अपने समस्त आचार्यों और गुरुओं को देखा।

उसने अपने सभी पितरों को देखा अर्थात् पिता की ओर के काका, ताऊ आदि को भी देखा। इसके पश्चात् अर्जुन ने पितामह

अर्थात् अपने दादाजी को देखा तथा अपने कुल के ज्येष्ठ काकाओं और वृद्धजनों को भी देखा।

अर्जुन ने यह अनुभव किया कि जिन पितामह का वह अत्यन्त लाड़ला है, उन्हीं के साथ उसे युद्ध करना है।

जिन आचार्य द्रोण का वह प्रिय शिष्य है, उन्हीं के विरुद्ध उसे शस्त्र उठाने होंगे। अर्जुन ने अपने मामाओं को भी वहाँ उपस्थित देखा।

उसने देखा कि कोई किसी का पुत्र है, कोई किसी का पिता है, कोई किसी का दादा है, कोई किसी का पोता है, कोई किसी का मामा है और कोई किसी का भाञ्जा है।

इस प्रकार अर्जुन ने अपने समस्त आप्त स्वजनों को अपने ही सम्मुख युद्ध के लिए खड़ा हुआ देखा। उसने अपने पुत्रों और पौत्रों को भी वहाँ देखा।

इतना ही नहीं, अर्जुन ने अपने मित्रों को भी युद्धभूमि में उपस्थित पाया। **यह दृश्य अत्यन्त भयङ्कर था, क्योंकि यह युद्ध अपार विनाश का कारण बनने वाला था**।

सभी आप्तजन युद्ध के लिए आमने-सामने खड़े थे।

- **अर्जुन के मन में प्रश्न उत्पन्न हुआ, क्या ऐसा युद्ध होना उचित है?**

वास्तव में युद्ध तो अपने स्वरूप में कभी भी पूर्णतः उचित नहीं होता। दोनों पक्षों की हानि हीं करवाता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इन आप्तजनों के अतिरिक्त अर्जुन ने किसी और को भी युद्धभूमि में देखा?

1.27

श्वशुरान्सुहृदश्चैव, सेनयोरुभयोरपि।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः(स्), सर्वान्बन्धूनवस्थितान्।।1.27।।

ससुरों को और सुहृदों को (देखा) अपनी अपनी जगह पर स्थित उन सम्पूर्ण बान्धवों को (देखकर) -

विवेचन- अपने ससुरों को अर्जुन ने देखा और अपने सुहृद अर्थात् मित्रों को उसने देखा। **सुहृद का अर्थ है, हित चिन्तक, हित (भला) चाहने वाले**।

यदि कोई हम से मैत्री करे न करे पर यदि वह हमारा हित चाहता है तो वह सुहृद है।

प्रश्न- हम सबका सुहृद कौन है?
उत्तर- भगवान् सबके सुहृद हैं। हम उनसे प्रेम करें न करें मैत्री करें न करें; वे हैं जो सबका सदैव भला ही चाहते हैं, वे हमारे सुहृद हैं।

अर्जुन ने दोनों सेनाओं में यह देखा कि सभी आप्त, स्वजन, मित्र, गुरु शिष्य, मामा-भाँजा आदि युद्ध के लिए आमने-सामने खड़े हैं। इन्हें देख कर अर्जुन के मन में क्या भावनाएँ उठती हैं? यह हमें देखना है।

उनको देख कर, समझकर कुन्ती पुत्र अर्जुन ने युद्ध के लिए सज्ज अपने समस्त आप्त, स्वजनों को आमने-सामने खड़ा

देखा, तो अर्जुन का मन अत्यन्त करुणा से भर गया और विषाद में डूबकर इस प्रकार (विषादपूर्वक) बोलने लगे।

- **यहाँ विषाद का अर्थ केवल सामान्य दुःख, शोक नहीं अपितु ऐसा गहन शोक है, जिसमें मनुष्य पूर्णतः दुःख में डूब जाता है तथा अपने कर्तव्य कर्म का निर्णय करने में वह असमर्थ हो जाता है**।

जब ऐसे अत्यन्तिक शोक से कोई बाहर नहीं निकल सकता तो ऐसा शोक, **विषाद** कहलाता है।

अपने समस्त स्वजनों को युद्ध के लिए आमने-सामने खड़ा देखकर अर्जुन अत्यन्त करुणा से भर गये और विषाद में डूबकर इस प्रकार बोलने लगे।

इस विषाद की अवस्था को स्पष्ट करने के लिए सन्त ज्ञानेश्वर महाराज एक अत्यन्त सुन्दर उपमा देते हुए कहते हैं,

तेव्हा मनीं गजबज जाहली आणि आपैसी कृपा आली ।
त्या अपमानानें सोडून निघाली वीरवृत्ति ॥

अर्थात्
जिस प्रकार कोई तेजस्वी, कुलीन पति को प्रेम करने वाली पत्नी अपने पति का किसी अन्य स्त्री के साथ सङ्ग सहन नहीं कर पाती और उसे अपना अपमान समझकर वह घर छोड़कर, पति को त्यागकर चली जाती है।

ज्या उत्तम कुळींतिल असती आणि लावण्य गुणवती ।
त्या इतर स्त्रीयाँस न साहती तेजस्वीपणें ॥

उसी प्रकार, जब अर्जुन के अन्तःकरण में विषाद, करुणा और दुःख के प्रवेश करते ही, ज्ञानेश्वर महाराज के अनुसार उनकी वीर वृत्ति रूपी पत्नी ने, उस अपमान को सहन न कर पाने के कारण, उन्हें छोड़ दिया अर्थात् विषाद के कारण **अर्जुन का शौर्य क्षीण हो जाता है** और **उनकी वीर प्रवृत्ति शिथिल पड़ जाती है**।

- **जो अर्जुन अभी तक रणभूमि में अडिग और दृढ़ था, वही अर्जुन अब करुणा और शोक के वशीभूत होकर अपने तेज को खोने लगते हैं**।

अब आगे अर्जुन स्वयं अपनी इस आन्तरिक अवस्था का वर्णन करने लगते हैं और कहते हैं-

1.28

कृपया परयाविष्टो, विषीदन्निदमब्रवीत्। अर्जुन उवाच
दृष्ट्वेमं स्वजनं(ङ्) कृष्ण, युयुत्सुं(म्) समुपस्थितम्।।1.28।।

वे कुन्तीनन्दन अर्जुन अत्यन्त कायरता से युक्त होकर विषाद करते हुए ऐसा बोले - डटे हुए युद्ध के अभिलाषी इस स्वजन समुदाय को देखकर

1.29

सीदन्ति मम गात्राणि, मुखं(ञ्) च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे, रोमहर्षश्च जायते।।1.29।।

मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं और मुख सूख रहा है तथा मेरे शरीर में कँपकँपी (आ रही है) एवं रोंगटे खड़े हो रहे हैं।

विवेचन- अपनी शरीरिक स्थिति का वर्णन अर्जुन श्रीभगवान् से करते हुए कहते हैं,

"युद्ध के लिए उतावले अपने स्वजनों को सम्मुख खड़े देखकर, मेरे गात्र (शरीर के अङ्ग) ही मानों गल रहे हैं, शिथिल पड़ रहे हैं, मेरा मुख सूख रहा है।"

- **"वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।"**

"मेरा शरीर काँप रहा है और मेरे शरीर में रोमाञ्च, रोंगटे खड़े हो रहे हैं।"

आगे और क्या हो रहा है?

1.30

गाण्डीवं(म्) स्रंसते हस्तात्, त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं(म्), भ्रमतीव च मे मनः।।1.30।।

हाथ से गाण्डीव धनुष गिर रहा है और त्वचा भी जल रही है। मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है और (मैं) खड़े रहने में भी असमर्थ हो रहा हूँ।

विवेचन- अर्जुन कहते हैं,
"मेरा गाण्डीव धनुष हाथ से छूट रहा है।"

अर्जुन यह अनुभव कर रहे हैं कि जिस धनुष को वे सहजता से सँभालते थे, वही अब उनके हाथों में स्थिर नहीं रह पा रहा है।

वे आगे कहते हैं, "मेरी त्वचा जल रही है।"
अर्थात् विषाद और मानसिक उद्वेग के कारण अर्जुन के शरीर में तीव्र दाह का अनुभव हो रहा है।

अर्जुन कहते हैं, "मैं खड़ा भी नहीं रह पा रहा हूँ।"
अर्जुन का सारा शरीर शिथिल हो गया है और युद्धभूमि में खड़े रहने की शक्ति भी उनमें नहीं बची है।

अन्ततः अर्जुन कहते हैं, "मेरा मन भ्रमित हो गया है।"

इसका तात्पर्य यह है कि अर्जुन का विवेक ढक गया है और वे यह निर्णय करने में असमर्थ हो गए हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं।

भ्रमतीवचमे मन:, मेरा मन मानो भ्रमित हो गया है। कुछ समझ में नहीं आ रहा। कुछ सूझ नहीं रहा है। कभी-कभी हमारी अवस्था ऐसी हो जाती है। हमें कुछ नहीं सूझता।

अर्जुन तो कह रहा है मैं खड़ा भी नहीं हो पा रहा हूँ। मैं धनुष भी नहीं पकड़ पा रहा हूँ। मेरे रोङ्गटे खड़े हो गए हैं। मेरा गला सूख गया है। मेरा मुख सूख गया है। मेरा शरीर कम्पित हो रहा है। मेरे अवयव गल रहे हैं। एक क्षण में अर्जुन की अवस्था बदल गई।

अर्जुन की अवस्था कैसे बदल गई? **दृष्ट्वेम स्वजनम् कृष्ण**, अपने आप्त-स्वजनों को देखकर मेरी ये अवस्था हो गई है, ऐसा अर्जुन बता रहे हैं।

श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, यह अवस्था किसकी हुई है यह पहले समझ लीजिए। ये अर्जुन कौन हैं जिसकी ऐसी अवस्था हो गई। यह कोई सामान्य योद्धा नहीं हैं।

ज्याने संग्रामी हर जिंकला,
जब शिवजी अर्जुन की परीक्षा लेने के लिए आए थे तब अर्जुन ने युद्ध में उनको भी पराभूत किया था।
जिसने युद्ध में भगवान् शिवजी पर भी विजय प्राप्त करली थी, अर्जुन ऐसे योद्धा हैं। इस प्रसंग पर 'केदारार्थ अर्जुनियम्' नामक एक पुस्तक भी है।

निवात कवच संहार केला,
निवात, कवच नाम के राक्षसों को जिसने समाप्त किया।

तो अर्जुन ही मोहे ग्रासिला क्षणा मध्ये,
एक क्षण में वो अर्जुन उस मोह के चक्कर में अटक गये, फँस गये।

ऐसे अर्जुन जो इस मोह के चक्कर में फँस गये, उसके लिए श्रीज्ञानेश्वर महाराज की उपमा तो अप्रतिम उपमा है। इस उपमा का कोई वर्णन नहींी , इतनी सुन्दर उपमा है। श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

जैसा भ्रमर भेदी कोड़े हवे ते काष्ठ कोरडे,
भ्रमर भवरा, भूङ्गा हम जानते हैं भ्रमर गुङ्ग-गुङ्ग करके आता है। उसमें इतनी शक्ति होती है कि सूखी लकड़ी को भी वह कुरेद देता है, उसमें छेद कर सकता है।

परंतु तो ही सापडे कोवळ्या कलिकेत,
लेकिन वही भ्रमर जब कमल पुष्प में पराग कण खाने के लिए जाता है और पराग कण खाते-खाते उसमें इतना रम जाता है कि उसे पता ही नहीं चलता कि सूर्यास्त हो गया है और कमल की पङ्खुड़ियाँ मिट जाती हैं। वह कमल फिर से कलिका बन जाता है। तब उस कलिका से भ्रमर बाहर नहीं निकल सकता। इतनी कोमल कलिका है। कमल की पङ्खुड़ियाँ कितनी कोमल होती हैं, क्या वह उनको कुरेद कर बाहर नहीं आ सकता? आ सकता है पर वह बाहर नहीं आता। क्यों? क्योंकि वह मोह में है।

उस कमल के पराग कणों का मोह उसको ऐसा हो जाता है कि वह जो सूखी लकड़ी को भी कुरेद सकता है, वह कोमल पङ्खुड़ियों को छेद के बाहर नहीं आ सकता।

तेथे प्राणासही मुकेल परि चिरणार नाही ते कमल,
वहाँ मर भी जाएगा तो भी वह कमल की पङ्खुड़ीयों को काट कर बाहर नहीं आता।

हां आप्त स्नेह वाटे कोमल पर कठिन अत्यंत.
श्रीज्ञानेश्वर माऊली कहते हैं यह आप्त-स्वजनों का जो स्नेह होता है यह लगता तो कोमल है परन्तु इस स्नेह, मोह से स्वयं को अलग करना या इसको काटना अत्यन्त कठिन होता है।

स्वजनों के प्रेम को काटना, स्वजनों के स्नेह को काटना अत्यन्त कठिन होता है और अर्जुन को यही हो गया है।

जो बड़े-बड़े योद्धाओं से निपट सकते है, निवात, कवच राक्षसों को मार सकते है, वे अर्जुन इस समय अपने आप्त-स्वजनों के मोह में एकदम से हतबल हो गए है। उनका सारा बल जैसे समाप्त ही हो गया है, उनके हाथ-पाँव गलने लग गए हैं।

अब अर्जुन थोड़ा सम्भल गए हैं, सजग हो गए हैं और श्रीभगवान् को क्या कह रहे हैं?

1.31

निमित्तानि च पश्यामि, विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि, हत्वा स्वजनमाहवे।।1.31।।

हे केशव! मैं लक्षणों को भी विपरीत देख रहा हूँ (और) युद्ध में स्वजनों को मारकर श्रेय (लाभ) भी नहीं देख रहा हूँ।

विवेचन- अर्जुन कहते है,
"हे केशव! मुझे विपरीत लक्षण दिखाई दे रहे हैं। अपने स्वजनों को मारकर मेरा कुछ भी कल्याण नहीं होगा, मुझे तो इसमें कोई कल्याण दिखाई नहीं दे रहा है।"

1.32

न काङ्क्षे विजयं(ङ्) कृष्ण, न च राज्यं(म्) सुखानि च।
किं(न्) नो राज्येन गोविन्द, किं(म्) भोगैर्जीवितेन वा।।1.32।।

हे कृष्ण! (मैं) न तो विजय चाहता हूँ, न राज्य (चाहता हूँ) और न सुखों को (ही चाहता हूँ)। हे गोविन्द! हम लोगों को राज्य से क्या लाभ? भोगों से (क्या लाभ)? अथवा जीने से (भी) क्या लाभ?

विवेचन- अचानक अर्जुन की भाषा बदल गई तथा अर्जुन कहने लग गए, **"मुझे विजय नहीं चाहिए।"**

ऐसा एक अवसादग्रस्त (Depressed) व्यक्ति ही कहता है। **मुझे नहीं देनी है परीक्षा; मैं अनुत्तीर्ण हो जाऊँ तो भी चलेगा। ऐसा कौन कहेगा?**

जब मनुष्य अवसादग्रस्त हो जाता है तब ऐसी भाषा बोलता है। अर्जुन अवसादग्रस्त हो गए, अवसाद में चले गए और कह रहे हैं, **"न कांक्षे विजयम् कृष्ण।"** अर्थात्

हे कृष्ण! मुझे विजय नहीं चाहिए।

कौन नहीं चाहता विजय? केवल अवसादग्रस्त व्यक्ति ही विजय नहीं चाहता।

विजय तो सबको प्रिय होती है। विजयी होना सबको अच्छा ही लगता है, परन्तु **अर्जुन कह रहे है, मुझे विजय की इच्छा नहीं है, आकांक्षा नहीं है। मुझे ये राज्य भी नहीं चाहिए**।

इतना समृद्ध हस्तिनापुर का राज्य है, "नहीं चाहिए मुझे यह राज्य, **न च राज्यम सुखानिच**।

और वो उसके साथ-साथ मिलने वाले जो भी सुख हैं, वे सुख भी मुझे नहीं चाहिए। कुछ नहीं चाहिए मुझे।"

अर्जुन के विचारों में अचानक परिवर्तन आ गया है। अर्जुन श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि-

- "हे गोविन्द! ये ऐसा राज्य प्राप्त करके मुझे क्या करना है?"
- "किम् भोगै ही सुख अर्थात् सुख-उपभोग मिल जाएँगे, तब भी उन भोगों से मुझे क्या करना है?"
- यहाँ तक कि "किम् जीवितेन वा अर्थात् जीवित रहकर भी मुझे क्या लाभ होने वाला है? मैं मर जाऊँ तो अच्छा होगा।"

ऐसा किसको लगता है? जो अत्यन्तिक अवसाद अवस्था में रहता है, उसको।

यह आत्महत्या जैसा विचार है कि नहीं? यह अर्जुन के मन में आया हुआ विचार, आत्महत्या के विचार जैसा विचार है।

किम भोग ही जीविते, जीवित रहकर भी क्या करना है? उससे अच्छा मर जाऊँ।

1.33

येषामर्थे काङ्क्षितं(न्) नो, राज्यं(म्) भोगाः(स्) सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे, प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।।1.33।।

जिनके लिये हमारी राज्य, भोग और सुख की इच्छा है, वे (ही) ये सब (अपने) प्राणों की और धन की आशा का त्याग करके युद्ध में खड़े हैं।

विवेचन- एक अच्छा जीवन जीने के लिए एक राजा को राज्य चाहिए, सुख चाहिए, उपभोग चाहिए, ऐसा हमें लगता है। पर अवसादग्रस्त अर्जुन कह रहे हैं,

"ये सब मैं जिनके लिए प्राप्त करना चाहता हूँ, ते अवस्थिता, वे ही यहाँ पर युद्ध करने के लिए आए हैं, मरने के लिए आए हैं।"

युद्ध के लिए प्राण हथेली पर लेकर आना पड़ता है। जिनके लिए मैं यह सब राज्य चाहता हूँ; वे ही यहाँ पर अपने प्राण हथेलियों पर लेकर आए हैं। **प्राण त्यक्तवा** अर्थात् प्राणों का त्याग करके आए हुए हैं।"

"जिनके लिए यह सब कुछ मैं प्राप्त करना चाहता हूँ; वे ही यहाँ मरने के लिए आए हैं। तो किसके लिए करें ये सब? वे ही नहीं चाहते तो करें किसके लिए?

"ते स्थिता युद्ध अर्थात् वे ही यहाँ पर धन और प्राणों का त्याग करके आए हुए हैं।"

युद्ध के दुष्परिणाम-

- **युद्ध जब होता है, तब धन का भी बहुत बड़ा अपव्यय होता है, नुकसान होता है और प्राणों की हानि तो होती ही हैं।**

जीवन हानि तो होती ही है। और वो भी कैसे जीवों की हानि होती है। **युद्ध में युवाओं की हानि होती है क्योंकि युद्ध के लिए कभी बड़े-बूढ़े नहीं जाते**। वहाँ तो युवक योद्धा, श्रेष्ठ वीर जाते हैं और उनको अपने प्राणों का त्याग करना पड़ता हैं। तो ऐसे ही सारे यहाँ पर अपने प्राणों का त्याग करने के लिए आए हुए हैं। उनमें कौन-कौन है?

1.34

आचार्याः(फ्) पितरः(फ्) पुत्रास्, तथैव च पितामहाः।
मातुलाः(श्) श्वशुराः(फ्) पौत्राः(श्), श्यालाः(स्) सम्बन्धिनस्तथा।।1.34।।

आचार्य, पिता, पुत्र और उसी प्रकार पितामह, मामा, ससुर, पौत्र, साले तथा (अन्य जितने भी) सम्बन्धी हैं,

विवेचन- जिस प्रकार सञ्जय ने धृतराष्ट्र को कुरुक्षेत्र का हाल बताया, वैसे ही यहाँ पर अर्जुन श्रीभगवान् को बता रहे है,

"हे कृष्ण! यहाँ पर हमारे पितर खड़े हैं। चाचा, काका खड़े हैं। पिता खड़े हैं। आचार्य खड़े हैं। मेरे गुरु द्रोणाचार्य मेरे सामने खड़े हैं।"

किसी-किसी के गुरु या कोई न कोई परिजन है। अर्जुन के शिष्य भी वहाँ पर आए हुए हैं, अर्जुन के गुरु भी वहाँ पर आए हुए हैं।

"पितामह, दादाजी ये सब आए हुए हैं यहाँ पर हैं। मामा, ससुर, पौत्र आदि हैं।"

"शालाह, शालक है," जिसके लिए कहा जाता है सारी दुनिया एक ओर जोरू (पत्नी) का भाई एक ओर, "ऐसे शालक भी यहाँ पर हैं, जो यहाँ मरने के लिए आए हुए हैं।"

कोई किसी का समधी है, तो कोई किसी का साला है तो कोई किसी का जीजा है।

"सारे ही आप्त-स्वजन युद्ध के लिए यहाँ युद्ध में प्रवृत्त होने आए हुए हैं।"

1.35

एतान्न हन्तुमिच्छामि, घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य, हेतोः(ख्) किं(न्) नु महीकृते।।1.35।।

(मुझ पर) प्रहार करने पर भी (मैं) इनको मारना नहीं चाहता, (और) हे मधुसूदन! (मुझे) त्रिलोकी का राज्य मिलता हो, तो भी (मैं इनको मारना नहीं चाहता), फिर पृथ्वी के लिये तो (मैं इनको मारूँ ही) क्या?

विवेचन- **एतान का अर्थ है इनको**, **"न हन्त इच्छामि अर्थात् मैं इनको मारना नहीं चाहता।"** ये सब आप्त-सम्बन्धी हैं, मैं इनको मारना नहीं चाहता।

अर्जुन कहते हैं कि श्रीभगवान्! मैं मर भी जाऊँगा तो भी मैं इनको मारना नहीं चाहता।

देखिए अर्जुन के मन में क्या विचार आ रहे है?

"मैं मर जाऊँगा, तो अच्छा होगा। इनको मारने से तो अच्छा है, मैं ही मर जाऊँ।"

"मैं मर भी गया, तो भी इनको मैं नहीं मारुँगा।"

"हे मधुसूदन! (**मधु नामक एक दैत्य का श्रीभगवान् ने संहार किया था इसलिए उनका एक नाम हो गया, मधुसूदन।**) आपने तो उस मधु नाम के दैत्य का संहार किया था, परन्तु यहाँ पर तो सब मेरे अपने आप्त-स्वजन खड़े हैं जिन्हें मैं नहीं मारुँगा। मैं मर भी जाऊँ तो भी मैं उन्हें नहीं मारुँगा।"

"यदि कोई मुझे त्रिलोक का भी साम्राज्य दे देता है, त्रिलोक का स्वामी भी कोई बना देता है तो भी नहीं।"
मैं मर भी जाऊँ या तीनों लोक का राज्य भी मुझे मिलता होगा, तो भी मैं आप्त-स्वजनों की हत्या नहीं करूँगा। ये हस्तिनापुर, पृथ्वी का छोटा सा राज्य, इसके लिए मैं क्यों लडू? मुझे तो त्रिलोक का राज्य भी कोई देता है, तो भी मैं नहीं लडूँगा।"

अर्जुन का विचार पक्का हो गया है। अर्जुन की मन:स्थिति में कैसा परिवर्तन हो गया है, यह हम देख रहे हैं।

शङ्खनाद करके अपना धनुष उठाकर, "मेरे साथ युद्ध करने के लिए कौन योग्य है, वह मैं देखना चाहता हूँ," कहने

वाले अर्जुन का आप्त-स्वजनों को देखते ही हृदय परिवर्तन हो गया, मन में करुण रस बहने लगा और उस करुणा के कारण अर्जुन कहते है, "मैं मर जाऊँगा तो अच्छा हो जाएगा। इनको मैं नहीं मारता। इन सभी को मारकर क्या मिलने वाला है?"

1.36

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः(ख्), का प्रीतिः(स्) स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान्, हत्वैतानाततायिनः।।1.36।।

हे जनार्दन! (इन) धृतराष्ट्र-सम्बन्धियों को मारकर हम लोगों को क्या प्रसन्नता होगी? इन आततायियों को मारने से तो हमें पाप ही लगेगा।

विवेचन- अर्जुन कहते है, **"हे जनार्दन! धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर हमें कौन-सा सुख प्राप्त होगा?"**

क्या इन्हें मारकर, हमें प्रसन्नता मिलेगी? नहीं, इससे तो हमें केवल पाप ही लगेगा। अपने ही भाइयों को मारने का हमें निश्चित ही पाप लगेगा।"

आगे आततायी शब्द का अर्थ समझाया गया है।

आततायी का अर्थ है, "अतिरेकी, अत्याचारी।"

हमारे देश में आज भी अनेक लोग इस प्रकार विचार करते हैं, "अरे! वे आतङ्कवादी हैं, तो क्या हुआ? वे अपने ही देश के हैं, अपने ही नागरिक हैं। उन्हें मारना उचित नहीं है।" ऐसी सोच आज भी देखने को मिलती है। परन्तु प्रश्न यह है कि आततायी कौन होता है?

आततायी की परिभाषा-

- **शास्त्रों में आततायी की स्पष्ट परिभाषा दी गई है। जो दूसरे का धन लूटता है, दूसरे की स्त्री का अपहरण या अपमान करता है, दूसरे की भूमि हड़प लेता है, शस्त्र से मारने का प्रयास करता है, विष देकर मारने का प्रयास करता है अथवा जलाकर मारने का प्रयास करता है, इनमें से कोई भी कर्म करने वाला व्यक्ति आततायी कहलाता है।**

दुर्योधन और दुःशासन दोनों ही आततायी क्यों हैं?-

- **दुर्योधन और दुःशासन ने पाण्डवों के प्रति ये सभी अपराध किए हैं। उन्होंने पाण्डवों की भूमि हड़प ली, उनका धन लूट लिया, द्रौपदी का अपमान किया और भरी सभा में उसका वस्त्रहरण किया। भीम को विष देकर मारने का प्रयास किया गया, शस्त्र से मारने का प्रयास किया गया और लाक्षागृह में जलाकर मारने का भी षड्यन्त्र रचा गया। इस प्रकार पाण्डवों को जलाकर भी मारने तक का प्रयास किया गया।**

ऐसे लोग यदि आततायी नहीं हैं, तो फिर आततायी कौन हैं?, यह प्रश्न स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

फिर भी अर्जुन के मन में यह विचार उत्पन्न होता है, "इन्हें मारने से मुझे पाप लगेगा।" यह विचार इसलिए आता है, क्योंकि उस समय अर्जुन का हृदय अत्यन्त करुणा से भर गया है और वह मोहग्रस्त हो गया है। यहाँ अर्जुन की मनःस्थिति को समझना ही मुख्य उद्देश्य है।

अर्जुन के मन में यह भाव आता है, "इन पापियों को मारकर हम स्वयं पाप क्यों ग्रहण करें?"

वे कहते हैं, "यह राज्य मुझे नहीं चाहिए, यह सुख मुझे नहीं चाहिए। यदि ये मुझे मार डालें तो भी ठीक है, परन्तु मैं इन्हें नहीं मारूँगा। हे मधुसूदन! मैं स्वयं मर जाऊँगा, परन्तु अपने स्वजनों को नहीं मारूँगा।"

हम क्रमशः यह देख रहे हैं कि युद्ध की स्थिति कैसी थी, युद्ध टल नहीं सकता था। प्रारम्भ में अर्जुन की मनःस्थिति कैसी थी और अब उस में कैसा गहन परिवर्तन आ गया है, यह भी हमने देखा।

आगे के श्लोकों में अर्जुन अपनी इसी परिवर्तित मनःस्थिति का वर्णन श्रीभगवान् के समक्ष करते है, उस का विवेचन अगले सत्र में देखेंगे।

इसी के साथ आज का सत्र श्रीभगवान् के चरण कमलों में अर्पण करते हुए विवेचन सम्पन्न होता है और प्रश्नोत्तर सत्र लिए जाते हैं।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- वैजयन्ती दीदी।
प्रश्न- कभी-कभी जीवन में ऐसी परिस्थितियों का निर्माण होता है कि हमें कुछ निर्णय लेने होते हैं, जो हमें असमञ्जस्य की स्थिति में ले जाते हैं, जहाँ हम चाह कर भी कोई निर्णय नहीं ले पाते तथा जब हम स्वयं के निर्णय का आङ्कलन करते हैं कि हमारे उस निर्णय को लेने से हमारे जीवन में क्या लाभ तथा हानि होगी?, तब हम और अधिक असमञ्जस्य की स्थिति में उलझ जाते हैं क्योंकि तुलना करने पर लाभ तथा हानि दोनों समतुल्य प्रतीत होते हैं। इस सम्बन्ध में जब परिजनों से विचार-विमर्श का प्रयास करते हैं तब वे कहते हैं कि जो भी उचित लगे, वह करो।

इस दुविधापूर्ण स्थिति से मुक्ति हेतु हमें क्या करना चाहिए?, कृपया मार्गदर्शन करें।

उत्तर- इस प्रश्न का उत्तर जानने हेतु हमें श्रीमद्भगवद्गीता जी की शिक्षाएँ ग्रहण करना आवश्यक है क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीता जी मनुष्य के विवेक को जागृत करती हैं जिसके परिणामस्वरूप हम जीवन में उचित निर्णय लेने में सक्षम हो पाते हैं।

ऐसी ही दुविधापूर्ण स्थिति श्रीमद्भगवद्गीता जी के अध्याय एक में हमें अर्जुन के मन में देखने को मिलती है, जिन्हें अपने दो कर्तव्यों के मध्य एक का चुनाव करना है।

जिनका प्रथम कर्तव्य अपने परिजनों की रक्षा करना है तथा द्वितीय कर्तव्य अधर्मियों के विरुद्ध युद्ध में प्रवृत्त होना है। यह करना उचित होगा या नहीं, इस द्वन्द्व पूर्ण स्थिति में, अर्जुन विचार करते हैं कि चूँकि दोनों ही मेरे कर्तव्य हैं, अत: मुझे क्या करना चाहिए तथा क्या नहीं।

अर्जुन के जीवन में जब यह क्षण आता है तब उन्हें उचित मार्ग दिखाने हेतु, उनके साथ भगवान् श्रीकृष्ण हैं। उसी प्रकार जीवन में हमारे मार्गदर्शन हेतु श्रीमद्भगवद्गीता जी विद्यमान हैं, जो स्वयं श्रीभगवान् की वाङ्मायी मूर्ति सदृश्य हैं। अत: कहा जाता है कि-

जयतु- जयतु गीता वाङ्मायी कृष्ण मूर्ति।।

वर्तमान में श्रीभगवान् की यही वाङ्मायी मूर्ति मनुष्यों को जीवन में उचित निर्णय लेने हेतु प्रेरित करती है; उनका मार्गदर्शन करतीं हैं, परन्तु जब तक श्रीमद्भगवद्गीता जी का अध्ययन एवं चिन्तन नहीं करेंगे तब तक हम श्रीभगवान् की उस ओजस्वी एवं दिव्य वाणी के माध्यम से जीवन में उचित तथा अनुचित का भेद कैसे समझ सकते हैं।

वह स्थिति जबकि हम श्रीमद्भगवद्गीता जी के ज्ञान से अनभिज्ञ हैं, उन मनुष्यों हेतु जीवन में उनके द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों को उचित मार्ग प्रशस्त करने का यह प्रयास, श्रीभगवान् के शरणागत हो जाना है अर्थात् भगवान् की मूर्ति के समक्ष विराजित हो,

जिनसे आप प्रेम करते हैं, जिस पर आप विश्वास करते हैं, उनके समक्ष बैठ कर चिन्तन प्रारम्भ कर, भगवान् को प्रणाम करते हैं।

भगवान् का स्मरण करते हुए भगवान् को मन ही मन यह कहना कि भगवान् यह निर्णय लेने में मैं असमर्थ हूँ, नहीं ले पा रहा हूँ। कृपया आप मुझे उचित मार्ग प्रशस्त करें तथा ध्यान करते हुए, उन समस्त बिन्दुओं के विषय में चिन्तन करना चाहिए, जो आपके निर्णय को प्रभावित कर रहे हैं तथा भगवान् के समक्ष चिन्तन करते हुए जिस बिन्दु पर आपका ध्यान स्थित हो जाये, उसे यह मान लेना चाहिए कि स्वयं भगवान् ने आपका मार्गदर्शन किया है।

यह भगवान् की आज्ञा है, उनकी इच्छा है, यह मानते हुए, उस बिन्दु को धारण कर लेना चाहिए।

तब परिणाम जैसा भी हो, यह विचार मन में होना चाहिए कि यह निर्णय भगवान् का है। अपने निर्णय को पूर्णत: भगवान् को समर्पित कर देना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता जी में श्रीभगवान् भी मनुष्य को कर्मयोग की शिक्षा देते हैं, जिसके अनुसार भक्त को मन में मात्र यह विचार रखते हुए अपने समस्त कर्म सम्पादित करने चाहिए कि वह निमित्त मात्र है तथा भगवान् ने उसे जो कर्म करने की प्रेरणा दी है, उन्हें अपना धर्म समझ पूर्ण करें तथा उन्हें श्रीभगवान् को अर्पित कर दे। यही कर्मयोग है।

- श्रीमद्भगवद्गीता जी को अपने आचरण में लाने पर, वे स्वतः ही अपने भक्त को उचित मार्ग पर अग्रसर करतीं हैं।

जब एक बार श्रीमद्भगवद्गीता जी का हाथ थाम लिया तो कदापि न त्यागना। जीवन की दुविधाओं से वे स्वयं, आपको मुक्ति प्रदान कर; ईश्वरीय पथ पर अर्थात् उचित दिशा पर ले चलेंगीं।

प्रश्नकर्ता- पद्मिनी दीदी।
प्रश्न- शरीर को जड़ क्यों कहते हैं? चूँकि यह शब्द तो हम उन पदार्थों हेतु उपयोग में लाते हैं, जिनमें प्राण अनुपस्थित होते हैं।
उत्तर- देह में स्वयं प्राण नहीं होते। जब देह जीवात्मा के सम्पर्क में आती है तब उसके जीवात्मा से जुड़ जाने से उसमें प्राण आ जाते हैं। जीवात्मा की उपस्थिति के कारण ही उसमें प्राण है तथा उसकी अनुपस्थिति में देह जड़ ही है।
इसलिए जब किसी व्यक्ति का देहान्त होता है तब हम देखते हैं कि उस व्यक्ति के नेत्र, नाक, कान आदि समस्त शरीर विशेषताएँ तो वैसी ही हैं परन्तु देह में हलचल नहीं है।

हम तब कहते हैं कि इसमें राम नहीं हैं। अब इसे उठाओ। यह एक मृत देह (Dead Body) है।

अत: देह जड़ है। वह चेतना के प्रभाव से हलचल कर रहा है। परन्तु वह जिन अवयवों से निर्मित हुआ है, वे समस्त अवयव जड़ हैं।

- **देह एवं चैतन्य को पृथक करने पर हम पाते हैं कि देह जड़ है**।

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||